यूरोपियन सेनानायक और उनके निहित स्वार्थ

डॉ0 मीरा, रा0म0प्र0 (स्नातकोत्तर)

महा विद्यालय गुरूकुल नारसन (हरिद्वार)

बूढ मुगल सम्राट मुहम्मद शाह (1748) ई0 की मृत्यु तथा वेलेजली के अधीन अंग्रेजों का उत्कर्ष (1803 ई0) के बीच का समय विदेशी व्यापारियों के लिए स्वर्ण युग था। यह महान अव्यवस्था व अस्थिरता का युग था व 18 वीं शताब्दी के भारत की इस व्यवस्था का लाभ यूरोप के धन लोलुप सैनिकों ने भी बखूबी उठाया और ऐसे ही कई कारणों से उनकी संख्या व गतिविधियां और प्रभाव दिन प्रतिदिन बढा। भारत अंग्रेजों व फ्रांसीसीयों को धन कमाने की बड़ी ही आसान भूमि दिखाई पड़ी। उसी समय मुगल साम्राज्य के पतन और उसके खंडहरों पर अनेक सैनिक राज्यों के उदय ने सैन्य व्यवस्था व नेतृत्वकर्ताओं के भाग को भी बढा दिया जबकि यूरोपियन शस्त्रों की मदद से अंग्रेजों व फ्रांसीसीयों की महान विजयों ने उन सभी का भी सम्मान बढ़ाया जो यूरोपियन तरीकों व अनुशासन की जानकारी होने का दावा या बहाना कर सकते थे इन साहसी सैनिकों को युद्ध में केवल तोपची व रेजीमेंटो और ब्रिगेडो का कमांडर पद ही मिला जिनसे वेतन देने वाला शासक व्यक्तिगत रूप से सलाह करता था। सर्वविदित है कि मुगल साम्राज्य के विघटन काल में बहुत से विदेशी यूरोपीय सैनिक अपनी भाग्य परीक्षा के लिए भारत आये।

सैनिक दायित्वों को निभाने में अधिक योग्य होने के कारण न केवल प्रत्येक राजा व नवाब इनको अपनी सेना में रखना चाहता था बल्कि यह जरूरी भी हो चला था प्रत्येक शासनाध्यक्ष अपनी सैनिक पंक्ति को दूसरे की अपेक्षा अधिक मजबूत कर ले क्योंकि यह वह समय चल रहा था जब देश की लगभग किसी को चिंता न थी और सभी राजा रजवाड़े अपने अस्तित्व की आन बान शान को बढ़ाने में यह भूल चुके थे कि देश हित सर्वोपरि है और राष्ट्र के पतन में स्वयं उनका पतन भी निश्चित है। परंतु यह सोचने का किसी के पास वक्त नहीं था परिणाम स्वरुप भारतीय दरबार यूरोपियन सैनिकों से भर गए थे। अंग्रेजी ढंग से शिक्षित यह छोटे या बड़े सैनिक समूहो का नेतृत्व करते थे। वह अपने व्यवसायों के कारण भारतीय दरबारों की सेवा के लिए उत्सुक थे।

यूरोपियन सेनानायक और उनके निहित स्वार्थ–

मुगल सत्ता के पतन से पहले जो भी यूरोपियन भारत आए थे उनका उद्देश्य संभवत अपने व्यापार से ही था। उन्हें देश के आंतरिक मामलों से कोई खास लेना–देना नहीं था वह अपने व्यापार के अंतर्गत मात्र अपने फायदों तक ही सीमित थे जो कि जहांगीर और शाहजहां के समय से ही भारत आ रहे थे लेकिन जैसे ही औरंगजेब के इस विशाल साम्राज्य का उसकी मृत्यु के बाद पतन होना आरंभ हुआ तब ऐसी स्थिति का फायदा उठा कर न केवल राजशाही राजकुमार बल्कि देश के कोने–कोने से महत्वकांक्षी सरदार भी अपने–अपने राज्य बनाने लगे। सभी राज"ाही की बंदरबांट में लगे हुए थ। देश आर्थिक रूप से कमजोर हुआ इसी स्थिति का फायदा उठाकर यहां यूरोपियन भी आ धमके।

अंग्रेज, डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी व अन्य देशों से जो भी व्यापारी आ रहे थे वे घात लगाकर बैठे थे कि कब देश निम्न परिस्थिति में पहुंचे तथा वह शासकों के आपसी झगड़ा में पंच की भूमिका का निर्वहन करें। उन्होंने यहां आकर क्षेत्रीय राज्यों में सेवा करनी आरंभ की और बदले में धन पाने की अपनी लालसा को पूरा करते रहे। सर्वविदित था कि क्लाइव जैसे सैनिक के सेनानायकत्व में बंगाल व अवध के नवाबों को पराजित किया गया था। इस तरह यूरोपियन सैनिकों की मांग देशभर के राज्य रजवाड़ों में बढ़ने लगी थी।

राज्य रजवाड़े अब इन यूरोपियनों को अपनी सेवा में दूसरों को दबाने हेतु अंधाधुंध ले रहे थे। परिणामतः देश के ज्यादातर दरबारों में इन विदेशी सैनिकों की भरमार हो गई थी वे अपने अपने सैनिक दल रखते थे और धन के बदले यह राजाओं, शासकों को अपनी सेवाएं प्रदान करते थे परंतु इनमें कुछ सेनानायक ऐसे भी थे जिन्होंने राजनैतिक परिपेक्ष में एक विशिष्ट भूमिका का निर्वहन किया। रैने मादे, थॉमस लेंग, रेमंड समरू, जॉर्ज थॉमस, बिनॉइट डी0 बोयन और पैरन जैसे कुछ ऐसे खास सेनानायक थे जिन्होंने भारतीयों को अपनी बहादुरी का बेमिसाल परिचय दिया इनमें से दो प्रमुख सेनानायक ऐसे हैं जिन्होंने भरतपुर के जाट शासकों को अपनी विशिष्ट सेवाएं प्रदान की इनमें वॉल्टर रेनहर्ड समरू एवं रैने मादे मुख्य तौर से प्रसिद्ध है।

वाल्टर रेनहर्ड समरूः–

समरू जर्मनी का रहने वाला था। पे"ो से कसाई समरू फ्रांसीसी सेवा में एक निजी सैनिक के रूप में भर्ती हुआ था और उसके बाद वह भारत आया। यहां पर वह ईस्ट इंडिया

कंपनी की सेवा में चला गया और सार्जेंट के पद तक पहुंचा। उसके बाद गिग्री नाम का एक अमेरिकन जो बंगाल के नवाब कासिम का मंत्री था, ने जॉर्जियन खान के उपनाम से समरू को अपनी सेवा में ले लिया उस वक्त उसके मालिक व अंग्रेजों के बीच युद्ध शुरु होने वाला था स्वभाव से बंगाल का नवाब बुरा व्यक्ति नही था लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी के लोभी कर्मचारियों ने उसे अपमान व नुकसान पहुंचाकर जबरदस्ती पागल वह दुष्ट बना दिया था। परिणामतः सारे यूरोपियन निवासी बंदी बना लिए गए। दृढ़ निश्चय नवाब ने अक्टूबर 3, 1763 ई0 को उन सब को मारने के लिए समरू का प्रयोग किया। समरू ने जल्दी ही अपने सैनिकों के साथ ही इस घणित कार्य को अंजाम दिया। उसके बारे में कहा जाता है कि उसने स्वयं पटना में 150 व्यक्तियों को कत्ल कर दिया था। जब मीर कासिम अंग्रेजों से परास्त हो गया तो वह नवाब वजीर शुजाउद्दौला की सेवा में चला गया लेकिन शुजाउद्दौला की पराजय के बाद समरू ने उन्हें छोड़ दिया इसके बाद वह रूहेलखंड के प्रसिद्ध नवाब हाफिज रहमत खां के पास आया। लेकिन अंग्रेजों के भय के कारण उसने उसे भी जल्दी ही छोड़ दिया। 1764 ई0 में उसने अपनी बटालियन बढ़ानी प्रारंभ कि व शीघ्र ही उसने बटालियनो को चार तक बढ़ा दिया। धन लालसा हेतु उसने अपनी सैनिक बटालियन को सदा ही ऊंची बोली लगाने वाले को दिया। सबसे पहले डींग के जाट राजा, उसके बाद जयपुर के राजा, प्रधानमंत्री नजफ खाँ और उसके बाद मराठों को अपनी सेवाएं प्रदान करता रहा। यूरोपियन उसकी बटालियनों के अधिकारी होते थे और अनपढ़ ग्रामीण सैनिक। अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेवा को छोड़कर जर्मन सेना नायक समरू अपने अधीन विदेशी सैनिक दल के साथ लगभग अप्रैल 1765 में जवाहर सिंह की सेवा में उपस्थित हुआ था। 14 दिसंबर 1767 जब जयपुर और जवाहर सिंह की सेनाओं के बीच मावण्डा (जयपुर के 60 मील उत्तर में) की प्रसिद्ध लड़ाई में भयंकर युद्ध के बाद अनिर्णय की स्थिति पैदा हो गई तब समरू की प्रसिद्ध बटालियनों ने अपना दिमाग शांत रखा और अंधकार होने तक अपनी पीठ चट्टानी दीवारो की ओर करके लड़ते रहे और जवाहर सिंह को हार से बचाया।

राजा रत्न सिंह की हत्या के बाद नवल सिंह और रणजीत सिंह के बीच गृह युद्ध शुरू हो गया था। मराठा सेनाऐं रणजीत सिंह का साथ दे रही थी जबकि समरू व रैने मादे ने सिंहासन के वैधानिक दावेदार नवल सिंह का साथ दिया। दोनों विद्रोही सेनाओं में "सोख" में खूनी संघर्ष हुआ। समरू व रैने मादे ने मराठों के दृढ़ निश्चयी व बार–बार आक्रमणों का बहादुरी से सामना किया। अंत में जाट सेना परास्त होकर भाग गई। दो हल्की तोपों के अलावा जिन्हें समरू अपने साथ ले गया शेष सारी तौपे वहीं मैदान पर छोड़ दी थी। अगर समरू व रैने मादे

ने अपने निडर व्यवहार से वापस लौटते सैनिका की रक्षा नही की होती तो मराठों की तलवारों से एक सैनिक भी ना बचा होता।

31 अक्टूबर 1773 ई0 को बनारस के पास नजफखाँ के नेतृत्व वाली मुगल सेनाओं से नवल सिंह की रक्षा की। समरू के पास यूरोपियन ढंग से प्रशिक्षित बंदूकधारियों की तीन बटालियने थी, हालांकि इस युद्ध में भरतपुर की सेनाएं इधर उधर भाग गई लेकिन वह अपनी जगह डटा रहा। मई 1774 में सेनापति समरू जो अब तक जाटों के दुश्मनों के लिए आतंक का पर्याय बन चुका था, ने शाही दरबार छोड़ दिया क्योंकि वास्तव में उसकी दिल्ली की ओर शानदार वापसी के समय समरू की मिर्जा जनफ खाँ से मुलाकात हुई। उसे खिल्लत प्राप्त हुआ और वह पानीपत व उसके आस–पास के इलाकों (परगनों) का फौजदार नियुक्त हुआ। परिणामतः अब वह जाटो व अन्यों के विरूद्ध नजफ खाँ की और से लडा। डींग के ऐतिहासिक घेराव (मई 1775 ई0 से अप्रैल 1776 ई0) के दौरान उसने सही समय पर पहुंचकर नजफखाँ को बचाया। समरू की प्रतिभा व उसकी सेवाओं को देखते हुए नजफखाँ ने उसे जाबिता खाँ के क्षेत्र (सहारनपुर, बिजनौर) के साथ वाला क्षेत्र दिया गया। उसने अपना मुख्यालय सरधना को बनाया जो उनकी पत्नी बेगम समरू के नियंत्रण में रहा। सरधना की जायदाद जिसकी आय की कीमत उन दिनों रू0 600000 थी। उसे अपने सैनिकों के रखरखाव हेतु मिली थीं

4 मई 1778 ईसवी को आगरे में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी बेगम समरू (जिसका ईसाईकरण 50 वर्ष की उम्र में 07 मई 1781 ई0 को जोहाना के नाम से किया गया था, ने उसे आगरा ले जाकर वहां के सबसे पुराने रोमन कैथोलिक शमशान की पवित्र भूमि में दफना दिया। उसकी समाधि के पत्थर पर पुर्तगाली भाषा में खुदाई की गई है "एक्वी ई जो वाल्टर रीनहार्ड मोरियो ऑफ 4 ई0 मई नी एन्नी 1778"।

यह प्रसिद्ध फ्रांसीसी जनरल जून या जुलाई 1767 ई0 में जवाहर सिंह की सेना में शामिल हुआ था। इसने 14 दिसंबर 1767 ई0 को लडे गये युद्ध में जवाहर सिंह की ओर से अपनी प्रशिक्षित सेना के साथ बहादुरी का परिचय दिया। युद्ध के बाद इस बहादुर सेनापति की आय में अपने सैनिकों की संख्या बढ़ाने हेतु रू0 5000 मासिक की वृद्धि कर दी गई। जाट राजा ने मादे को एक किला घेरने के लिए भेजा जहां एक दूसरी जाति जमी हुई थी वह वीरता के साथ लड़ा और लगभग डेढ़ माह बाद किले की महत्वपूर्ण चोटी पर चढ़ने में सफल हो गया। किले के सैनिकों ने डर के मारे आत्मसमर्पण कर दिया। 1768 ई0 जवाहर सिंह की आकस्मिक

मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई रत्न सिंह उत्तराधिकारी बना। राजा रत्न सिंह की वृंदावन की धार्मिक यात्रा के समय भी रैने मादे उसके सहायक दल में शामिल था लेकिन राजा रत्न सिंह के लिए यह यात्रा अंतिम यात्रा साबित हुई उनकी हत्या कर दी गई। उनकी मृत्यु के बाद उत्पन्न उत्तराधिकार विवाद में उसने बड़े भाई का साथ दिया था।

मराठों व नवल सिंह के नेतृत्व वाली जाट सेनाओं के बीच "सोंख" की लड़ाई में भी रैने मादे ने दुश्मन के दृढ़ निश्चयी हमलों का बहादुरी के साथ सामना किया। "सोंख" के पास हुई आखरी युद्ध में 1770 ई0 में उसकी सारी सैनिक इकाइयां लगभग समाप्त हो गई थी उसके घोड़े, ऊंट, शस्त्र व तोपे मराठो द्वारा पकड़ लिए गए थे परंतु राजा नवल सिंह बहादुर ने कप्तान को उसके नुकसान के लिए हर्जाना देकर उसके साथ ईमानदारी का व्यवहार किया। रैने मादे ने जल्दी से अपनी इकाइयों को पुनः स्थापित करने का कार्य शुरू कर दिया। वर्षा व सर्दी के दिनों, जुलाई 1770 ई0 से फरवरी 1771 के दौरान उसने सैनिकों की भर्ती की और अपने सैनिको को प्रशिक्षित कर लिया। 1772 ई0 के शुरू में राजा नवल सिंह ने रैने मादे को दोआब क्षेत्र में मालगुजारी बढ़ाने के लिए भेजा, जिसमें वह पूर्ण रूप से सफल हुआ।

परंतु इसी समय यूरोप में एंग्लो फ्रांस युद्ध की संभावनाऐं बढ़ रही थी। यद्यपि रैने मादे को जाटों से, जो उसे लगातार काफी धन दे रहे थे, कोई शिकायत नहीं थी, लेकिन उसने पांडिचेरी के गवर्नर एम0 कैविलियर के उकसाने तथा अपने देश की पुकार पर जाटों की सेवा छोड़ने का फैसला कर लिया। इस प्रकार रैने मादे 55 मील यात्रा करके 1772 ई0 में दिल्ली पहुंचा।

अब रैने मादे 28 दिसंबर 1772 ईस्वी को अपनी नई भूमिका में दिल्ली की दीवारों तले मराठों रुहेलो और जाटों के खिलाफ युद्ध क्षेत्र में अमीर–उज–उमरा मिर्जा नजफखाँ का साथ दिया। मिर्जा ने उसे नजफ कुली की मदद के लिए भेजा ताकि जाटों के विरुद्ध उसकी मदद कर सके। वह बरसाना के युद्ध में भी लडा।

डींग के किले के एतिहासिक घेराव मई 1775 ई0 से 1776 ई0 के दौरान रहीमदाद के हाथों अपनी पराजय के बाद रैने मादे मिर्जा नजफखाँ की सेना में पुनः शामिल हो गया। इस प्रकार शानदार जनरल ने अपनी लिखित यादें छोडी जो उस समय के भारतीय इतिहास की मूल्यवान जानकारी देती हैं।

इस प्रकार इन दो प्रसिद्ध यूरोपियन सेनानायको ने भरतपुर के राज इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह न केवल वीर थे बल्कि मूलतः वें उचित समय पर सही फैसले लेने में भी सक्षम थे। भारतीय शासक इन पर खुले दिल से विश्वास करते थे। वे यहां व्यापार के लिए आए थे लेकिन यहां की भारत की अस्त–व्यस्त व्यस्था से लाभ उठाकर वे यहां के राजाओं की सेना में भी स्थान प्राप्त करते चले जा रहे थे। उनकी धन प्राप्त करने की लालसा प्रबल थी। इसी कारण से अपनी जान पर खेलकर भी भारतीय राजाओं का साथ दे रहे थे। यहां के राजाओं ने भी इन नायकों को इनकी सेवाओं के बदले मालामाल कर दिया।

इस प्रकार सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अधिकतर सैनिक तो यहां अपनी भाग्य परीक्षा के लिए आए थे लेकिन उन्होंने (समरू, रैने मादे) यह साबित कर दिया था कि उनमें उच्च कोटि के सैनिक व सेनानायक के भरपूर गुण भी मौजूद थे।

सन्दर्भः–

1. कीन–द फॉल ऑफ मुगल एम्पायर, पृ0सं0–31–32
2. ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी–बेगम समरू, मे मै यदुनाथ सरकार की प्रस्तावना से उद्धत। खण्ड–4
3. दिल्ली क्रानिकल
4. जामे–ए–जहाँनुमा, कदर–उल–तुल्ला, इलियत एण्ड डॉउसन द्वारा अनुदित, खण्ड–8
5. मिर्जा मुहम्मद–इबरतनामा
6. एम0एन0 शर्मा– द लाइफ एण्ड टाइम्स और बेगम समरू ऑफ सरधना
7. गंगा सिंह–यदुवं"।
8. सी0एस0 वर्मा–भरपुर ए सागा ऑफ इनविंसीबल करेज
9. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–3
10. मैमोयर्स ऑफ रैने मादे, सर यदुनाथ कृत